

झारखंड : संस्कृति, समाज और विकास की बलिवेदी

रणेन्द्र

वीर भारत तलवार की सद्यःप्रकाशित पुस्तक झारखंड के आदिवासियों के बीच : एक एक्टीविस्ट के नोट्स से गुजरना एक विरल अनुभव संसार से सुपरिचित होना है। झारखंड, आदिवासी अस्मिता, उनके श्रेष्ठ सांस्कृतिक मूल्य, भाषिक साहित्यिक सम्पन्नता, विकास बुलडोजर की बर्बरता, आंतरिक औपनिवेशिकता की भयावहता आदि पृष्ठ दर पृष्ठ पाठक के समक्ष खुलते जाते हैं। 'नोट्स' के बहाने लेखक ने विधागत बाधाओं को छलांगने की कोशिश की है ताकि वे आदिवासी, आदिवासियत और उनकी पीड़ा की गुत्थियों को सुलझा सकें।

सत्तर के दशक में तलवार ने इस इलाके में पूर्णकालिक कार्यकर्ता के रूप में सक्रिय जीवन गुजारा था। उन्होंने एक जिज्ञासु विद्यार्थी की तरह अपने भीतर बहुत कुछ बटोरने संजोने की कोशिश की थी। तभी वे यहां आदिवासी बनाम अन्य समाज, विकास बनाम विस्थापन, मुख्यधारा बनाम मौन धारा के मिथक और यथार्थ की भिन्नताओं के विश्लेषण में सक्षम दिखते हैं। कथित मुख्यधारा 'आदिवासी' को जिस दृष्टि से देखती है, लेखक उसे अच्छी तरह से समझता है, "आदिवासियों से अनजान लोग उनके प्रति बहुत सी गलत धारणाएं रखते हैं और उन्हें असभ्य तथा जंगली समझते हैं और जब उनके सम्पर्क में आते हैं तो उनके साथ ऐसा ही व्यवहार भी करते हैं। यह तथाकथित सभ्य समाज की असभ्यता, अहंकार और कूपमंडूकता है। उन्हें यह मालूम होना चाहिए कि न सिर्फ मुंडा, बल्कि भारत की अधिकांश बड़ी आदिवासी जातियां सभ्य हैं, सुसंस्कृत हैं, भाषा और लोकसाहित्य से सम्पन्न हैं और उनमें लिखित साहित्य की भी रचना हो रही है।" इसी अंहकारी, पूर्वाग्रही, कूपमंडूक असभ्य समाज का प्रतिनिधि है 'जोजोहातु का वह सरकारी वैद्य', मैथिल ब्राह्मण झा जी जो स्वास्थ्य केन्द्र में रखी लाखों रुपये की दवाओं को बीमार आदिवासियों को बांटने में अपनी हेठी समझता है और उनसे बदतमीजी से पेश आने, गालियां देने, स्वास्थ्य केन्द्र न खोलने में अपना बड़प्पन। (पृ. 33)

कथित मुख्यधारा की दूसरी गलत अवधारणा यह है कि वह न केवल झारखंड के 32 आदिवासी समुदायों को बल्कि भारत की करीब 427 आदिवासी जातियों को अभिन्न, एक समान, एक रैखीय संरचना वाला मानता है। लेकिन यथार्थ कुछ और ही है, आदिवासी समुदाय भी सांस्कृतिक, आर्थिक और समाजिक दृष्टिकोण से एक दूसरे से भिन्न हैं। यहां भी विविधताएं हैं जो धैर्य से समझे जाने की मांग करती हैं। लेखक ने झारखंड के गांवों, हाटों, मेलों टेलों, अखड़ा सरना में वर्षों बैठ कर इस विविधता को महसूस किया है, "अलग अलग आदिवासी जातियां अपने ऐतिहासिक विकास की अलग अलग मंजिलों पर हैं और उनकी समाज व्यवस्था एवं संस्कृति भी अलग अलग है। कुछ आदिवासी जातियां ऐसी भी हैं, जो अभी भी मानव समाज की सबसे प्राचीन अवस्था में हैं — जैसे, अंडमान की कुछ जातियां। कुछ आदिवासी जातियां किसी खास पेशे में लगी हुई हैं और आहार संग्रह की अवस्था

में हैं तो कुछ आदिवासी जातियां खेतिहर अवस्था में है। झारखंड में 'बिरहोर' जाति आहार संग्रह की अवस्था में है।..." (पृ. 660-661)

लेखक को यह मालूम था कि उसकी यह पुस्तक ऐसे सुधी पाठकों के हाथों में भी जायगी जो झारखंड और यहां के आदिवासी समुदायों से बिल्कुल अपरिचित अजाने होंगे। अतएव तलवार ऐसे पाठकों के लिए झारखंड के बड़े पांच आदिवासी समुदायों (संताल, उरांव, मुंडा, खड़िया, हो) में से एक, मुंडाओं के गहन समाजशास्त्रीय विश्लेषण में जाते हैं। इस समुदाय के संदर्भ में वे एक विशेषज्ञ समाजशास्त्री के रूप में प्रकट होते हैं। ऐसा इसीलिए सम्भव हो सका है क्योंकि उन्होंने मुंडा इलाकों में पूरे मन से एक लम्बी अवधि सचेतन रूप से गुजारी है। वे मुंडा समाज के गोत्र टोटम, पाहन, सरना, बोंगा, हाट मेला, अखड़ा नाच, पर्व, त्योहार आदि का सविस्तार वर्णन करते हैं। मुंडाओं के झारखंड में आगमन एवं गोत्र गण जनपद के जाति (नेशन) में विकास पर अलग अलग अध्याय इस पुस्तक की उपादेयता में वृद्धि करते हैं।

प्रथम मुंडा इतिहासकार, चंडोर के सागू मुंडा को याद करने, पर्सनल पेपर्स में उनकी कहानी उन्हीं की जुबानी सुनाते, मुंडा गण के विघटन को समझाते, 'नोटबुक से' उपशीर्षक के तहत पुनः मुंडारी लोकगीत पर बात करते डब्ल्यू.जी. आर्चर और जगदीश त्रिगुणायनों के मुंडारी लोकगीतों के संकलन का बारीक विश्लेषण करते हुए लेखक बार बार मुंडारी लोकजीवन, संस्कृति, साहित्य की समृद्धि और खूबसूरती की ओर हमारा ध्यान खींचता है।

आदिवासी समाज संस्कृति क्षेत्र के प्रथम पूर्ण प्रवासी वेरियर एल्विन से पंडित नेहरू ने आदिवासियत को समझने की कोशिश की थी। इसी 'समझ' ने पांचवीं अनुसूची में सम्मिलित आदिवासी इलाकों के लिए एक पंचशील का सिद्धांत विकसित किया। जिसके तहत इन इलाकों में बाहरी हस्तक्षेपों को न्यूनतम करना, प्रशासनिक ढांचे में स्थानीयता को बढ़ावा देना और इन इलाकों के विकास की गति को भौतिक व्यय के माप से मुक्त रखने की शर्तें शामिल थीं। किन्तु पूंजीवादी विकास के दबाव में पंडित नेहरू ने ही ये शर्तें तोड़ दीं। कथित विकास के उप उत्पाद के रूप में विस्थापन और पलायन सामने आया जो न केवल झारखंड बल्कि देश के सभी आदिवासी इलाकों के लिए विध्वंसकारी साबित हुआ। इस पुस्तक में 'विकास के प्रश्न' उपशीर्षक के तहत इसी प्रगति की बलिवेदी की पड़ताल की गयी है।

यह वीर भारत तलवार की तथ्यपरक दृष्टि ही है जो झारखंड की राजनीति और राजनीतिज्ञों को भावुक नजरिये से नहीं देखती बल्कि वस्तुपरक विश्लेषण करने के क्रम में उनकी कमजोरियों पर भी उंगली रखती है। उपनिवेशकालीन झारखंड में हुए विद्रोहों क्रांतियों की श्रृंखला और उसकी महत्ता से लेखक सुपरिचित है। वह महान संताल हूल के नायक सिद्धू कानू से लेकर भगवान बिरसा मुंडा की महत्ता को पुनः प्रतिष्ठित करता है। किन्तु इस आंदोलन की परम्परा के विकास से वह संतुष्ट नहीं है। गांधीवादी और कम्युनिस्ट आंदोलनों ने आदिवासियों की विशिष्टताओं को रेखांकित नहीं किया और न उनके अनुरूप अपने आंदोलनों कार्यक्रमों में कोई बदलाव लाने की कोशिश की। ये तथ्य लेखक को उद्बलित करते हैं, "गांधीवादियों ने, खासकर ठक्कर बापा और उनके आदिम जाति सेवा मंडल ने, आदिवासियों के प्रति वही उद्धारक वाला दयापूर्ण दृष्टिकोण रखा, जैसे वे दलितों के प्रति रखते थे। ये गांधीवादी ऊंची जातियों की सवर्ण मानसिकता के साथ आदिवासियों को सुसंस्कृत करने की कोशिश करते रहे। दूसरी ओर कम्युनिस्ट आदिवासियों को एक क्रांतिकारी वर्ग के हिसाब से देखते रहे जो उन लोगों द्वारा तय की गयी नयी जनवादी या राष्ट्रीय जनवादी क्रांति में अपनी भूमिका अदा करेंगे।"

चूंकि लेखक एक सुनिश्चित राजनैतिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही पटना में 'फिलहाल' के सम्पादन को स्थगित कर, झारखंडी इलाके में पूर्णकालीन कार्यकर्ता के रूप में सक्रिय था अतएव उसने समाजवादी चेतना के साथ झारखंडी आंदोलन के साथ सम्बंध बनाये। पुस्तक की भूमिका 'जोहार!'

में वे अपनी इस राजनैतिक सक्रियता की तफसील में जाते हैं। लेखक एक ओर झारखंड आंदोलन के लिए संगठन, सिद्धांत और संघर्ष सम्बंधी प्रशिक्षण शिविरों की सफलता, जिनके परिणामस्वरूप 1978 के पंद्रह अगस्त से प्रारम्भ हुई 'सीधी कार्रवाई' नामक आंदोलन की व्यापकता तथा कोल्हान के 'जंगल आंदोलन' के प्रभाव से संतुष्ट दिखता है वहीं दूसरी ओर झारखंडी राजनेता अपने अहम, स्वार्थपरता और व्यक्तिवादिता से उसे दुखी करते जान पड़ते हैं। लेखक के ही शब्दों में "झारखंडी नेताओं में अपना अपना अहंकार और अपनी स्वार्थ भावना काफी थी और एक बड़े लक्ष्य के लिए मिल कर विकास नहीं हुआ था। लिहाजा आम चुनाव आने से पहले ही मोर्चा बिखर गया और चुनाव में सभी झारखंडी दल एक दूसरे के खिलाफ खड़े हो गये। इस घटना ने मुझे काफी निराश किया।" (पृ. 21-22)

लेखक की संवेदनशील दृष्टि से झारखंड के सदानों (गैर आदिवासियों) की भी पीड़ा ओझल नहीं रही है। इस पुस्तक के प्रथम उपशीर्षक 'समाज' के अंतर्गत ही 'पलामू के बंधुआ मजदूरों' की अनसुनी चीख शब्दाकार ग्रहण करती है। रामशरण जोशी की आदमी, बैल और सपनों में भी पलामू के इन बंधुआ मजदूरों की बदहाली और कलपती आवाजों से भेंट हुई थी।

इस पुस्तक के एक उपशीर्षक 'यह भी झारखंड में' के तीन अध्याय सदानों को समर्पित हैं। 'झारखंड के सदान और उनकी समस्याएं' सामान्य पाठक को ध्यान में रख कर लिखा गया आलेख है जो इस समुदाय और इनकी समस्याओं से रूबरू करवाता है। किन्तु मानभूम के एक जमींदार घर की औरतों की कहानी : उन्ही में से एक की जुबानी' एक अद्भुत अध्याय है। 'एक बंद सीलन भरी अंधेरी कोठरी में झांकता हुआ। युगों की चुप्पी, घुटन, शोषण और पीड़ा को जुबान देता हुआ। इसका पाठ देर तक पाठकों की स्मृति में गूंजता है और व्यथित करता है।

झारखंड के आदिवासियों की तरह सदानों की अपनी भाषाएं हैं जिनमें नगपुरिया, खोरठा, पंचपरगनिया, कुरमाली आदि प्रमुख हैं। 'मेघदूत' खोरठा में' शीर्षक अध्याय खोरठा के सुप्रसिद्ध कवि श्रीनिवास पानुरी की काव्य सामर्थ्य को बहुत ही शिद्दत से रेखांकित करता है।

विकास की पूंजीवादी प्रक्रिया की आलोचना तो आदिवासी या झारखंड विषयक हर पुस्तक में मिल जाती है किन्तु वैकल्पिक विकास की अवधारणा पर शोधपरक आलेख कम ही दिखते हैं। गहन शोधकर्ता के रूप में सुख्यात वीर भारत तलवार ने इस पुस्तक में भी अपनी श्रमसाध्यता के प्रमाण दिये हैं। लगभग 40 पृष्ठों के 'झारखंड में बड़े बांधों का विकल्प' शीर्षक आलेख ने अपनी गम्भीरता, खोजपूर्ण दृष्टि एवं मेहनत से एकत्र किये आंकड़ों से इस पुस्तक की महत्ता बहुत बढ़ा दी है। 1901-03 की भारतीय सिंचाई आयोग की रिपोर्ट, छोटानागपुर में नियुक्त पहले सर्वे सेटलमेण्ट अफसर जॉन रीड की रिपोर्ट, श्री ए.सी. डॉब्स, उपनिदेशक, कृषि विभाग का सन् 1919 का शोधपत्र एवं जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय के शोधछात्र प्रभु महापात्र के 1880 से 1920 के बीच छोटानागपुर से मजदूरों के पलायन पर किये गये शोधकार्य पर आधारित यह आलेख एक बहुत महत्वपूर्ण कार्य सिद्ध करता दिखता है।

लेखक की श्रमसाध्य शोधवृत्ति का दर्शन 'मुंडा गण का विघटन' अध्याय में भी होता है जब वे फादर हॉफमैन के सोलह खंडों वाले 'एन्साइक्लोपीडिया मुंडारिका' का आद्योपांत अध्ययन करने के बाद सामान्य पाठकों की सुविधा के लिए, किस अध्याय के किन पृष्ठों पर किस विषयवस्तु पर प्रकाश डाला गया है, इसका विश्लेषण करते हैं। तलवार जी का यह विश्लेषण इस एन्साइक्लोपीडिया की उपयोगिता को कितना बढ़ा देगा यह तो बस महसूस करने की बात है।

'कुछ खड़िया शब्दों की निरुक्ति', 'खड़िया, मुंडारी, संताली तथा हो की व्युत्पत्तिपरक शब्दावली' और 'रांची जिले के आदिवासियों के बीच हिन्दी के कुछ विशिष्ट प्रयोग' जैसे अध्याय लेखक के सूक्ष्म भाषाविज्ञानी स्वरूप से परिचित कराते हैं।

आदिवासी समुदायों के सामाजिक सांस्कृतिक जीवन मूल्यों पर लेखक सम्मोहित सा नहीं है। वह 'हो' समुदाय में 'गोनोड' (वधू मूल्य) की विकृत मांग पर क्षुब्ध है तो उरावों समाज में

सांस्कृतिक क्रांति की आवश्यकता पर भी बल देता है। वह बिरसा मुंडा के बाद आदिवासी समाज में एक सांस्कृतिक योद्धा की जरूरत को बार बार अलग अलग अध्यायों में रेखांकित करता है। 'ब्राह्मणवाद और झारखंडी संस्कृति' की स्पष्ट भिन्नताओं को विश्लेषित करता हुआ ब्राह्मणवादी मूल्यों के खतरों से अगाह करता चलता है।

अपनी इस पुस्तक में तलवार ने कुछ पुस्तकों की समीक्षाएं भी शामिल की हैं। वन विभाग के पदाधिकारी योगेन्द्र सिन्हा की पुस्तक 'वनलक्ष्मी' के कथ्य और उपन्यासकार की नीयत पर प्रश्नचिह्न तो ठीक हैं। किन्तु अन्य समीक्षाओं में संजीव और महाश्वेता देवी की खिंचाई गले नहीं उतरती। भले ही वह कथ्य की विश्वसनीयता या शिल्प को लेकर विद्वतापूर्ण और सूक्ष्मतापूर्ण प्रयास हों।

इसी प्रकार भूमिका 'जोहार!' में राजनैतिक सक्रियताओं के रेखांकन के क्रम में बार बार 'मैं' का आना भी खटकता है। अन्य छोटी मोटी तथ्यात्मक भूलें ध्यान खींचती हैं। 'पलामू के बंधुआ मजदूर' वाले अध्याय के पृष्ठ 94 पर नगोसिया को उरांवों की शाखा बतलाया गया है। जहां तक मेरी जानकारी है ये एक अलग आदिवासी समुदाय ही है जो उरांवों की तरह खेतिहर है।

'ब्राह्मणवाद और झारखंडी संस्कृति' वाले अध्याय में ब्राह्मणवाद की आलोचना करने की री में लेखक ने कुर्मियों की हिन्दू समाज में शूद्र दर्जे में चर्चा की है। (पृ. 213 द्रष्टव्य)। कुर्मी यूं तो झारखंड में पिछड़ी जातियों में सम्मिलित हैं किन्तु यथार्थ में शैक्षणिक सामाजिक राजनैतिक वर्चस्व के कारण अपने गांवों में एक तरह से सवर्णों की तरह ही विशेषाधिकारों का उपयोग करते हैं। इसी प्रकार भूमिज, चरो, खरवार आदिवासी समुदायों ने राजपूतों से विवाह सम्बंध कायम कर एक निम्न गोत्रीय राजपूतों की हैसियत धीरे धीरे पा ली है या उस दिशा में प्रयासरत हैं। ऐसे भी ये औपनिवेशिक काल के पूर्व शासक वर्ग में ही थे।

अंत में सिर्फ यह कि झारखंड और आदिवासी अस्मिताओं को समझने के लिए यह एक मुकम्मल और महत्वपूर्ण पुस्तक है। इन समुदायों की भौतिक बदहाली के साथ साथ, इनके सांस्कृतिक श्रेष्ठ मूल्यों का बार बार स्मरण भी जरूरी है। क्योंकि केन्या के प्रसिद्ध साहित्यकार न्गुगी वा थ्योंगों ने यह चेतावनी दी है कि 'शासित समूह की संस्कृति, भाषा, कला, इतिहास को नष्ट कर देना या जानबूझ कर उपेक्षा करना औपनिवेशिक शक्तियों का सांस्कृतिक हथियार है।' इसलिए इन विषयों पर बार बार लेखन, गहराई से रेखांकन अत्यंत महत्वपूर्ण साहित्यिक राजनैतिक कर्म है।

वीर भारत तलवार ने 'नोट्स' के रूप में विविध विधाओं के संयोजन समुच्चयन में जिस प्रकार सफलता पायी है विरल है।

झारखंड में आदिवासियों के बीच : एक एकटीविस्ट के नोट्स : वीर भारत तलवार

प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली , मूल्य : 500.00 रु.